

भारत का फलता-फूलता मुकदमेबाजी उद्योग



भारतीय न्यायतंत्र उर्फ मुकदमेबाजी उद्योग ने बड़ी संख्या में रोजगार उपलब्ध करवा रखा है। देश में अर्द्ध-न्यायिक निकायों को छोड़कर 20,000 से ज्यादा न्यायाधीश, 2,50,000 से ज्यादा सहायक स्टाफ, 25,00,000 से ज्यादा वकील, 10,00,000 से ज्यादा मुंशी टाइपिस्ट, 23,00,000 से ज्यादा पुलिसकर्मी इस व्यवसाय में नियोजित हैं और वैध-अवैध ढंग से जनता से धन ऐंठ रहे हैं। अर्द्ध-न्यायिक निकायों में भी समान संख्या और नियोजित है। फिर भी परिणाम और इन लोगों की नीयत लाचार जनता से छुपी हुई नहीं हैं। भारत में मुकदमेबाजी उद्योग एक चक्रव्यूह की तरह संचालित है, जिसमें सत्ता में शामिल सभी पक्षकार अपनी-अपनी भूमिका निसंकोच और निर्भीक होकर बखूबी निभा रहे हैं। प्रायः झगड़ों और विवादों का प्रायोजन अपने स्वर्थों के लिए या तो राजनेता स्वयं करते हैं या वे इनका पोषण करते हैं। अधिकांश वकील किसी न किसी राजनैतिक दल से चिपके रहते हैं और उनके माध्यम से वे अपना व्यवसाय प्राप्त करते हैं, क्योंकि विवाद के पश्चात पक्षकार सुलह-समाधान के लिए अक्सर राजनेताओं के पास जाते हैं और कालांतर में राजनेताओं से घनिष्ठ संपर्क वाले वकील ही न्यायाधीश बन पाते हैं।

इस बात का खुलासा सिंघवी सीडी प्रकरण ने भी कर दिया है। इस प्रकरण ने यह भी दिखा दिया कि न्यायाधीश बनने के लिए आशार्थी को किन कठिन परीक्षणों से गुजरना पड़ता है। भारत में किसी चयन प्रक्रिया में न्यायाधीशों या विपक्ष को भी शामिल करने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि जिस प्रक्रिया में जितने ज्यादा लोग शामिल होंगे; उसमें भ्रष्टाचार उतना ही अधिक होगा। प्रक्रिया में शामिल सभी लोग तुष्ट होने पर ही कार्यवाही आगे बढ़ पाएगी। यदि निर्णय प्रक्रिया में भागीदारों की संख्या बढ़ाने या विपक्ष को शामिल करने से स्वच्छता आती तो हमें विधायिकाओं के अतिरिक्त किसी अन्य संस्था की आवश्यकता क्यों पड़ती। इसलिए प्रक्रिया में जितना प्रसाद मिलेगा, उसका बंटवारा प्रत्येक भागीदार की मोलभाव शक्ति के अनुसार होगा और अंततः यह बंदरबांट का रूप ले लेगी। कहने को चाहे संवैधानिक न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायाधीश करते होंगे, किन्तु वास्तव में यह भी राजनीति की इच्छाशक्ति की सहमति से ही होता है। जहां राजनीति किसी नियुक्ति पर असहमत हो तो, देश में वकील और न्यायाधीश कोई संत पुरुष तो हैं नहीं, वे प्रस्तावित व्यक्ति के विरुद्ध किसी शिकायत की जांच खोलकर उसकी नियुक्ति बाधित कर देते हैं। अन्यथा दागी के विरुद्ध किसी प्रतिकूल रिपोर्ट को भी नजर अंदाज कर दबा दिया जाता है। विलियम शेक्सपियर ने भी (हेनरी 4 भाग 2 नाट्य 4 दृश्य 2) में कहा है, “हमारा सबसे पहला कार्य वकीलों को समाप्त करना है।”

वैसे भी भारत की राजनीति किसी दलदल से कम नहीं है और लगभग सभी नामी और वरिष्ठ वकील किसी न किसी राजनैतिक दल से जुड़े हुए हैं, जिसमें दोनों का आपसी हित है और दोनों एक दूसरे का

संरक्षण करते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया तो वैसे ही गोपनीय है और उसमें पारदर्शिता का नितांत अभाव है। न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के लिए मात्र कानून का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु वह व्यक्ति चरित्र, मनोवृत्ति और बुद्धिमता के दृष्टिकोण से भी योग्य होना चाहिए, क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति के भी कुटिल होने का जोखिम बना रहता है। अमेरिका में न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के समय उसकी पात्रता-बुद्धिमता, योग्यता, निष्ठा, ईमानदारी आदि की कड़ी जांच होती है और प्रत्येक पद के लिए दो गुने प्रत्याशियों की सूची राज्यपाल को नियुक्ति हेतु सौंपी जाती है, जबकि भारत में ऐसा कदाचित नहीं होता है।

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के दो न्यायाधीशों पर यौन शोषण के आरोप लगे और यह पाया गया कि उन्होंने शराब का सेवन किया तथा पीड़ित महिला को भी इसके लिए प्रस्ताव रखा। इससे यह प्रामाणित होता है कि वे लोग अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने वाले रहे हैं, जिनमें सात्विक और सद्बुद्धि की कल्पना नहीं की जा सकती। निश्चित रूप से ऐसे चरित्रवान लोगों को इन गरिमामयी पदों पर नियुक्त करने में देश से भारी भूलें हुई हैं, चाहे उन्हें दण्डित किया जाता है या नहीं। न्यायाधीश होने के लिए मात्र विद्वान होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु वह मन से सद्बुद्धि और सात्विक होना चाहिए। अन्यथा सद्चरित्र के अभाव में ऐसा पांडित्य तो रावण के समान चरित्र को ही प्रतिबिंबित कर सकता है और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

विधि आयोग की 197 वीं रिपोर्ट के अनुसार भारत में दोषसिद्धि की दर मात्र 2 प्रतिशत है, जिससे सम्पूर्ण न्यायतंत्र की क्षमता-योग्यता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। जबकि अमेरिका के संघीय न्यायालयों की दोष सिद्धि की जो दर 1972 में 75 प्रतिशत थी, वह बढ़कर 1992 में 85 प्रतिशत हो गयी है। वहीं वर्ष 2011 में अमरीकी न्याय विभाग ने दोष सिद्धि की दर 93 प्रतिशत बतायी है। भारत में आपराधिक मामलों में पुलिस अनुसंधान में विलंब करती है, फिर भी दोष सिद्धियाँ मात्र 2 प्रतिशत तक ही सीमित रह जाती हैं। इसका एक संभावित कारण है कि पुलिस वास्तव में मामले की तह तक नहीं जाती, अपितु कुछ कहानियां गढ़ती है और झूठी कहानी गढ़ने में उसे समय लगना स्वाभाविक है।

दोष सिद्धि की दर अमेरिकी राज्य न्यायालयों में भी पर्याप्त ऊँची है। रिपोर्ट के अनुसार यह टेक्सास में 84 प्रतिशत, कैलिफ़ोर्निया में 82 प्रतिशत, न्यूयॉर्क में 72 प्रतिशत उतरी कैलिफ़ोर्निया में 67 प्रतिशत और फ्लोरिडा में 59 प्रतिशत है। इंग्लैंड के क्राउन कोर्ट्स में भी दोष सिद्धि की दर 80 प्रतिशत है। हांगकांग के सत्र न्यायालयों में 92 प्रतिशत, वेल्स के सत्र न्यायालयों में 80 प्रतिशत, कनाडा के समान न्यायालयों में 69 प्रतिशत और ऑस्ट्रेलिया के न्यायालयों में 79 प्रतिशत है। ऐसी स्थिति में क्या भारत में मात्र 2 प्रतिशत दोष सिद्धि जनता पर एक भार नहीं है? क्या इतना परिणाम यदि देश में बैंकिंग या अन्य उद्योग दें तो सरकार इसे बर्दास्त कर सकेगी? फिर न्यायतंत्र के ऐसे निराशाजनक परिणामों को सत्तासीन और विपक्ष दोनों क्योंकर बर्दास्त कर रहे हैं? इससे न्यायतंत्र के भी राजनैतिक उपयोग की बू आती है। देश में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा वसूली हेतु दायर किये गए मामलों में भी, जहां पूरी तरह से सुरक्षित दस्तावेज बनाकर ऋण दिए जाते हैं, वसूली मात्र 2 प्रतिशत वार्षिक तक सीमित है, जबकि इनमें लागत 15 प्रतिशत आ रही है। देश की जनता को न्यायतंत्र की इतनी विफलता में क्रमशः न्यायपालिका, विधायिका, पुलिस व वकीलों के अलग-अलग योगदान को जानने का अधिकार है।

जहां तक नियुक्ति या निर्णयन की किसी प्रक्रिया में पक्ष-विपक्ष को शामिल करने का प्रश्न है, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि जो पक्ष आज सत्ता में है-कल विपक्ष में हो सकता है और ठीक इसके विपरीत भी। अतः इन दोनों समूहों में वास्तव में आपस में कोई संघर्ष-टकराव नहीं होता है, जो भी संघर्ष होता है-वह मात्र सस्ती लोकप्रियता व वोट बटोरने और जनता को मूर्ख बनाने के लिए होता है। यद्यपि प्रजातंत्र कोई मूकदर्शी खेल नहीं है, अपितु यह तो जनता की सक्रिय भागीदारी से संचालित शासन व्यवस्था का नाम है। जनतंत्र में न तो जनता जनप्रतिनिधियों के बंधक है और न ही जनतंत्र किसी अन्य द्वारा निर्देशित कोई व्यवस्था का नाम है। न्यायाधिपति सौमित्र सेन पर महाभियोग का असामयिक पटाक्षेप और राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश भल्ला द्वारा अपर सत्र न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले को देश की जनता देख ही चुकी है, जहां मात्र अनुचित नियुक्तियों को निरस्त ही किया गया और किसी दोषी के गिरेबान तक कानून का हाथ नहीं पहुँच सका। जिससे यह प्रमाणित है कि जहां दोषी व्यक्ति शक्तिसंपन्न हो, वहां कानून के हाथ भी छोटे पड़ जाते हैं।

देश के न्यायाधीशों की निष्पक्षता, तटस्थता और स्वतंत्रता खतरे में दिखाई देती है। देश का न्यायिक वातावरण दूषित है और इसकी गरिमा प्रश्नास्पद है। इस वातावरण में प्रतिभाशाली और ईमानदार लोगों के लिए कोई स्थान दिखाई नहीं देता है। न्यायाधीशों के पदों पर नियुक्ति हेतु आशार्थियों की सूची को पहले सार्वजनिक किया जाना चाहिए, ताकि अवांछनीय और अपराधी लोग इस पवित्र व्यवसाय में अतिक्रमण नहीं कर सकें। वर्तमान में तो इस व्यवसाय के संचालन में न्याय-तंत्र का अनुचित महिमामंडन करने वाले वकील, उनके सहायक, न्यायाधीश और पुलिस ही टिक पा रहे हैं।

हाल ही में उच्च न्यायालयों में मुख्य न्यायाधीश की पदस्थापना के लिए यह नीति बनायी गयी कि मुख्य न्यायाधीश किसी बाहरी राज्य का हो, किन्तु यह नीति न तो उचित है और न ही व्यावहारिक है। न्यायाधीश पूर्व वकील होते हैं और वे राजनीति के गहरे रंग में रंगे होते हैं। इस वास्तविकता की ओर आँखें नहीं मूंदी जा सकती। अतः देशी राज्य के वकीलों का ध्रुवीकरण हो जाता है और बाहरी राज्य का अकेला मुख्य न्यायाधीश अलग थलग पड़ जाता है तथा वह चाहकर भी कोई सुधार का कार्य हाथ में नहीं ले पाता, क्योंकि संवैधानिक न्यायालयों में प्रशासनिक निर्णय समूह द्वारा लिए जाते हैं। वैसे भी यह नीति देश की न्यायपालिका में स्वच्छता व गतिशीलता रखने और स्थानान्तरण की सुविचारित नीति के विरुद्ध है।

जहां एक ओर सत्र न्यायाधीशों के लिए समस्त भारतीय स्तर की सेवा की पैरवी की जाती है, वहीं उच्च न्यायालयों के स्तर के न्यायाधीशों के लिए इस तरह की नीति के विषय में कोई विचार तक नहीं किया जा रहा है, जिससे न्यायिक उपक्रमों में स्वच्छता लाने की मूल इच्छा शक्ति पर ही संदेह होना स्वाभाविक है। उच्च न्यायालयों द्वारा आवश्यकता होने पर पुलिस केस डायरी मंगवाई जाती है, किन्तु उसे बिना न्यायालय के आदेश के ही लौटा दिया जाता है। जिससे यह सन्देश जाता है कि न्यायालय और पुलिस हाथ से हाथ मिलाकर कार्य कर रहे हैं न कि वे स्वतंत्र हैं। क्या न्यायालय एक आम नागरिक द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज को भी बिना न्यायिक आदेश के लौटा देते हैं ?

केरल उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने एक बार राज्य के महाधिवक्ता द्वारा प्रकरणों में तैयार होकर न आने पर न्यायालय से ही वाक आउट कर दिया, बजाय इसके कि कार्यवाही को आगे बढ़ाते अथवा

महाधिवक्ता पर समुचित कार्यवाही करते अर्थात् जहां सामने सशक्त पक्ष हो तो न्यायाधीश भी अपने आपको असहाय और लाचार पाते हैं-उनकी श्रेष्ठ न्यायिक शक्तियां अंतर्ध्यान हो जाती हैं। भारत का आम नागरिक तो न्यायालयों में चलने वाले पैतरो, दांव-पेंचों आदि से परिचित नहीं हैं, किन्तु देश के वकीलों को ज्ञान है कि देश में कानून या संविधान का अस्तित्व संदिग्ध है। अतः वे अपनी परिवेदनाओं और मांगों के लिए दबाव बनाने हेतु धरनों, प्रदर्शनों, हड़तालों, विरोधों आदि का सहारा लेते हैं। आखिर पापी पेट का सवाल है। कदाचित् उन्हें सम्यक न्यायिक उपचार उपलब्ध होते तो वे ऐसा रास्ता नहीं अपनाते। सामान्यतया न्यायार्थी जब वकील के पास जाता है तो उसके द्वारा मांगी जानी वाली आधी राहतों के विषय में तो उसे बताया जाता है कि ये कानून में उपलब्ध नहीं हैं और शेष में से अधिकांश देने की परम्परा नहीं है अथवा साहब देते नहीं हैं।

पारदर्शिता और भ्रष्टाचार में कोई मेलजोल नहीं होता है, इस कारण न्यायालयों एवं पुलिस का स्टाफ अपने कार्यों में कभी पारदर्शिता नहीं लाना चाहता है। देश के 20,000 न्यायालयों के कम्प्यूटरीकरण की ईकोर्ट प्रक्रिया 1990 में प्रारंभ हुई थी और यह आज तक 20 उच्च न्यायालयों के स्तर तक भी पूर्ण नहीं हो सकी है। दूसरी ओर देखें तो देश की लगभग 1,00,000 सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक शाखाओं के कम्प्यूटरीकरण का कार्य 10 वर्ष में पूर्ण हो गया। इससे न्यायतंत्र से जुड़े लोगों की कम्प्यूटरीकरण में अरुचि का सहज अनुमान लगाया जा सकता है जो माननीय कहे जाने वाले न्यायाधीशों के सानिध्य में ही संचालित हैं। देश के न्यायालयों में सुनवाई पूर्ण होने की के बाद भी निर्णय घोषित नहीं किये जाते तथा ऐसे भी मामले प्रकाश में आये हैं, जहां पक्षकारों से न्यायाधीशों ने मोलभाव किया और निर्णय जारी करने में 6 माह तक का असामान्य विलम्ब किया। वैसे भी निर्णय सुनवाई पूर्ण होने के 5-6 दिन बाद ही घोषित करना एक सामान्य बात है।

कई बार पीड़ित पक्षकार को अपील के अधिकार से वंचित करने के लिए निर्णय पीछे की तिथि में जारी करके भी न्यायाधीश पक्षकार को उपकृत करते हैं। जबकि अमेरिका में निर्णय सुनवाई पूर्ण होने के बाद निश्चित दिन ही जारी किया जाता है और उसे अविलम्ब इन्टरनेट पर उपलब्ध करवा दिया जाता है। अपने अहम की संतुष्टि और शक्ति के बेजा प्रदर्शन के लिए संवैधानिक न्यायालय कई बार भारी खर्चे भी लगाते हैं, जबकि इसके लिए उन्होंने ऐसे कोई नियम नहीं बना रखे हैं, क्योंकि नियम बनाने की उन्हें कोई स्वतंत्र शक्तियां प्राप्त भी नहीं हैं।

एक मामले में बम्बई उच्च न्यायालय की दो सदस्यीय पीठ ने 40 लाख रुपये खर्चा लगाया जो उच्चतम न्यायालय ने घटाकर मात्र 25 हजार रुपये कर दिया। इस दृष्टांत से स्पष्ट है कि न्यायाधीश लोग अहम व पूर्वाग्रहों से कूटकूट कर भरे होते हैं व देश की अस्वच्छ राजनीति की ही भांति उनका आपसी गठबंधन व गुप्त समझौता होता है और समय पर एक दूसरे के काम आते हैं। अतः निर्णय चाहे एक सदस्यीय पीठ दे या बहु सदस्यीय पीठ दे, उसकी गुणवत्ता में कोई ज्यादा अंतर नहीं आता है। न्यायालयों द्वारा कई बार नागरिकों पर भयावह खर्चे लगाए जाते हैं, जबकि खर्चे शब्द का शाब्दिक अर्थ लागत की पूर्ति करना होता है और उसमें दंड शामिल नहीं है व लागत की गणना भी किया जाना आवश्यक है। जिस प्रकार न्यायालय पक्षकारों से अपेक्षा करते हैं। यदि किसी व्यक्ति पर किसी कानून के अंतर्गत दंड लगाया जाना हो तो संविधान के अनुसार उसे उचित सुनवाई का अवसर देकर ही ऐसा किया जा सकता है, किन्तु वकील ऐसे अवसरों पर मौन रहकर अपने पक्षकार का अहित करते हैं।

वकालत का पेशा भी कितना विश्वसनीय है, इसकी बानगी हम इस बात से देख सकते हैं कि परिवार न्यायालयों, श्रम आयुक्तों, (कुछ राज्यों में) सूचना आयुक्तों आदि के यहाँ वकील के माध्यम से प्रतिनिधित्व अनुमत नहीं है अर्थात् इन मंचों में वकीलों को न्याय पथ में बाधक माना गया है। फिर वकील अन्य मंचों पर साधक किस प्रकार हो सकते हैं? उच्च न्यायालयों में भी सुनवाई के लिए वकील अनुकूल बेंच की प्रतीक्षा करते रहते हैं-स्थगन लेते रहते हैं, यह तथ्य भी कई बार सामने आया है। जिसका एक अर्थ यह निकलता है कि उच्च न्यायालय की बेंचें फिक्स व मैनेज की जाती हैं व कानून गौण हो जाता है। कोई भी मूल प्रार्थी, अपवादों को छोड़कर, किसी याचिका पर निर्णय में देरी करने के प्रयास नहीं करेगा, फिर भी देखा गया है कि मूल याची या याची के वकील भी अनुकूल बेंच के लिए प्रतीक्षा करते हैं, जिससे उपरोक्त अवधारणा की फिर पुष्टि होती है।

देश में आतंकवादी गतिविधियाँ भी प्रशासन, पुलिस और राजनीति के सहयोग और समर्थन के बिना संचालित नहीं होती हैं। आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में भी परिवहन, व्यापार आदि चलते रहते हैं, जो कि पुलिस और आतंकवादियों व संगठित अपराधियों दोनों को प्रोटेक्शन मनी देने पर ही संभव है। वैसे भी इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें व्यापारी वर्ग को किसी शासन व्यवस्था से कभी कोई शिकायत रही हो, क्योंकि वे पैसे की शक्ति को पहचानते हैं तथा पैसे के बल पर अपना रास्ता निकाल लेते हैं। चाहे शासन प्रणाली या शासन कैसा भी क्यों न हो। पूंजीपति लोग सभी राजनैतिक पार्टियों को चन्दा देते हैं व अपने अनुकूल नीतियाँ व नियम बनवाते हैं तथा सरकारें तो कठपुतली की भांति उनके इशारों पर नृत्य मात्र करती हैं।

पुलिस के भ्रष्टाचार का अक्सर यह कहकर बचाव किया जाता है कि उन्हें उचित प्रशिक्षण प्राप्त नहीं है। अतः कार्य सही नहीं किया गया, किन्तु रिश्वत लेने का भी तो उन्हें कोई प्रशिक्षण नहीं होता फिर वे इसके लिए किस प्रकार रास्ता निकाल लेते हैं। ठीक इसी प्रकार एक व्यक्ति को गृहस्थी के संचालन का भी प्रारम्भ में कोई अनुभव नहीं होता, किन्तु अवसर मिलने पर वह आवश्यकतानुसार सब कुछ सीख लेता है। देश में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ गिरफ्तारियाँ होती हैं, जिनमें से 60 प्रतिशत अनावश्यक होती हैं। ये गिरफ्तारियाँ भी बिना किसी अस्वच्छ उद्देश्य के नहीं होती हैं, क्योंकि राजसत्ता में भागीदार पुलिस, अर्द्ध-न्यायिक अधिकारी व प्रशासनिक अधिकारी आदि को इस बात का विश्वास है कि वे चाहे जो मर्जी करें, उनका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है और देश में वास्तव में ऐसा कोई मंच नहीं है जो प्रत्येक शक्ति-संपन्न व सत्तासीन दोषी को दण्डित कर सके। जहाँ कहीं भी अपवाद स्वरूप किसी पुलिसवाले के विरुद्ध कोई कार्यवाही होती है, वह तो मात्र नाक बचाने और जनता को भ्रमित करने के लिए होती है।

यदि पुलिस द्वारा किसी मामले में गिरफ्तारी न्यायोचित हो तो वे, घटना समय के अतिरिक्त अन्य परिस्थितियों में, गिरफ्तारी हेतु मजिस्ट्रेट से वारंट प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु न तो ऐसा किया जाता है और न ही देश का न्याय तंत्र ऐसी कोई आवश्यकता समझता है और न ही कोई वकील अपने मुक्किल के लिए कभी मांग करता देखा गया है। यदि न्यायपालिका पुलिस द्वारा अनुसंधान में के मनमानेपन को नियंत्रित नहीं कर सकती, जिससे मात्र 2 प्रतिशत दोष सिद्धियाँ हासिल हो रही हों, तो फिर उसे दूसरे नागरिकों पर नियंत्रण स्थापित करने का नैतिक अधिकार किस प्रकार प्राप्त हो जाता है?